LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

2/4 (श्लोक 8-19), रविवार, 28 मई 2023

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/r_DUqYDFAb0

योगी के लक्षण एवं ध्यानयोग विधि

विवेचन सत्र का प्रारम्भ भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना, दीप प्रज्वलन और गुरु वन्दना से हुआ। निश्चित रूप से यह पूर्व जन्म की सुकृति है जो भगवान के श्रीमुख से प्रवाहित गीत श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में हमारे पास है। मनुष्य के जीवन में अनवरत संघर्ष चलता ही रहता है।

तुकाराम महाराज भी कहते हैं कि "जो मनुष्य अपने जीवन का कल्याण/निःश्रेयस चाहता है, उसको ही हाथ में गीता पाथेय मिल पायेगा और जो ये पाथेय लेकर चलेगा वही इस जीवन रूपी युद्ध में विजयी होगा।"

बाहर की परिस्थिति और अन्दर की मनोवृत्तियों का संघर्ष अनवरत चलने वाला है, ऐसे में इस अध्याय **आत्मसंयमयोग** को लेकर गुरुदेव कहते हैं कि इस अध्याय को जाने बिना, **भगवान ने धारणा, ध्यान, समाधि, एकाग्रता और एकान्त सेवन का जो भी उपदेश दिया** ये सब अपने जीवन में पूरा उतारे बिना गीता को जानना सम्भव नहीं है। यदि गीता के अंतरङ्ग में जाना हो तो हमें इस अध्याय को जानना और जीवन में उतारना अनिवार्य है। मनुष्य अनवरत संघर्षपूर्ण परिस्थिति में भी शान्ति चाहता है और शान्ति के बिना एकाग्रता नहीं तथा एकाग्रता के बिना अन्तिम ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कुछ न कुछ आत्मसंयम करे। यह अध्याय यही बताता है। इस अध्याय का नाम ही है **आत्मसंयमयोग।**

उदाहरणार्थ- सागर में मिलने के लिए गङ्गा नदी बहती है। गङ्गा जी के दो किनारे होते हैं, अगर ये दो किनारे नहीं होते तो क्या होता कल्पना कीजिए। ये दो किनारे नहीं होते तो गङ्गा जी का पानी इधर-उधर बिखर जाता और गङ्गा अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच पाती। इसी प्रकार मनुष्य को अपने जीवन का उन्नयन करते हुए निःश्रेयस की प्राप्ति करनी चाहिए।

लौकिक ध्येय या अलौकिक परमात्मतत्त्व की प्राप्ति हो तो मनुष्य को अपने जीवन में कुछ न कुछ अनुशासन एवं संयम लाना पड़ेगा, कुछ मात्रा में सन्तुलित जीवन जीने का प्रयास करना पड़ेगा और यह सन्तुलन ही सिखाने वाला ये सुन्दर अध्याय है जिसका नाम "**आत्मसंयमयोग**" है। आत्मा का प्रयोग संस्कृत भाषा में विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। वह शरीर स्तर पर भी किया जाता है, इन्द्रियों के स्तर पर भी किया गया है, वह मन के लिए भी प्रयुक्त हुआ है और बुद्धि के स्तर पर भी। अन्ततोगत्वा आत्म स्वरूप हेतु भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त सभी स्तरों पर प्रयोग हुए आत्मा से तात्पर्य होगा कि भगवान हमारे जीवन में संयम लाना चाहते हैं। आत्मसंयम का प्रयोग करना ही उचित होगा, यही इस अध्याय का पाथेय है।

हम जीते हैं शरीर के स्तर पर, इन्द्रियों के स्तर पर, मन के स्तर पर और बुद्धि के स्तर पर। ये चार हमारे स्तर हैं लेकिन एक स्तर जो हमारा आत्मतत्त्व है, चैतन्य तत्त्व है जिसके कारण ही हम बोल पाते हैं, देख पाते हैं, सुन पाते हैं, स्पर्श का अनुभव और स्वाद का अनुभव हो पाता है। जो चैतन्य धारा अन्दर से बहती है, हमारा जो मूल स्वरूप है इसका जब हमें विस्मरण हो जाता है और जब हम जीवन को साधना चाहते हैं तो जैसे-जैसे इन चारों स्तरों पर संयमन होता जायेगा, वह पाँचवाँ स्तर जो कहीं छुप गया है, उसकी प्राप्ति हम कर सकते हैं। यही इस अध्याय का अन्ततोगत्वा हमारे लिए सन्देश है।

हमने देखा किस प्रकार इस अध्याय का प्रारम्भ हुआ और पहले ही श्लोक में भगवान कहते हैं कि मनुष्य को अपना उद्धार स्वयं ही करना चाहिए।

इस अध्याय का श्लोक सङ्ख्या पाँच -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् |
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ||

बहुत सुन्दर श्लोक है जिसे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने दिनांक 28 मई, 2023 के दिन नए संसद भवन के उद्घाटन के अवसर पर गाया, जिन्होंने यह कार्यक्रम देखा होगा अवश्य ही स्मरण होगा।

तत्पश्चात उन्होंने अध्याय तीन का क्रमाँक इक्कीस श्लोक कहा-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः |
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

जिसका तात्पर्य है कि श्रेष्ठ लोग जिस प्रकार आचरण करेंगे, उसी मार्ग पर अन्य लोग अनुगामी होंगे इसलिए हमें अपने जीवन में अच्छे मार्ग का ही चयन करना होगा और अपना उद्धार स्वयं ही करना होगा। उन्होंने कहा कि पच्चीस वर्ष में ये भारत देश विकसित देश होना चाहिए। भारत भूमि के जो भी नागरिक हैं उन्हें स्वयं के उद्धार का प्रण लेना चाहिए और इस प्रकार भारत का उद्धार करते हुए भारत को विश्वगुरु के पद पर स्थापित करना चाहिए। इस श्लोक में ही मेरे यश के लिए उत्तरदायित्व है और अपने अपयश के लिए भी जिसे हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। अपने अपयश से सीखते हुए अपने जीवन को कल्याण की ओर, निःश्रेयस की ओर, उन्नयन की ओर ले जाना चाहिए।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि केवल देहाभिमान रखते हुए मनुष्य का जीवन जीना अन्ततोगत्वा अधोगति की ओर ले जाता है, इसलिए मनुष्य को उक्त चैतन्य तत्त्व के लिए अग्रसर होना चाहिए। जैसे वायुयान में कहा जाता है कि दूसरों की सहायता करने से पहले स्वयं की सहायता करें, अपना मास्क स्वयं पहनें। इस प्रकार दूसरों का उद्धार करने के पहले मनुष्य को स्वयं का उद्धार करने हेतु सिद्ध होना चाहिए तभी वह दूसरों के उद्धार करने हेतु योगी हो सकता है।

एक सुन्दर शेर है-

उम्र भर ग़ालिब यही भूल करता रहा,
धूल चेहरे पर थी आईना साफ़ करता रहा।

मनुष्य अपने चेहरे पर धूल होने पर भी दर्पण में धूल देखने की चेष्टा करता रहता है। जब हम दूसरे की तरफ एक अँगुली करते हैं तो अपनी तरफ चार अँगुलियाँ उठती हैं। ये बताने वाला सुन्दर श्लोक क्रमाङ्क पाँच हमने देखा कि मनुष्य को अपना उद्धार स्वयं करना चाहिए।

गुरु किसका उद्धार करते हैं, इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है-

एक आश्रम में एक सद्गुरु और उनके बहुत सारे शिष्य रहते थे। सभी शिष्य उस आश्रम में प्रवेश करके गुरु से आदेश प्राप्त करते हैं और जीवन में बदलाव करते हैं। एक शिष्य ने गुरुदेव से पूछा कि आप इतने लोगों का रूपान्तरण कैसे करते हैं, क्या विशेषता है आपमें, कि इतने लोगों का रूपान्तरण हो जाता है। गुरु ने उत्तर दिया कि रूपान्तरण मैं नहीं करता बल्कि पहले वह उसका समर्पण करता है। वह जितना ही अपने आप को चरणाश्रित और समर्पित कर देता है उतना ही उसका रूपान्तरण हो जाता है। गुरुदेव कहते हैं कि शिष्य को गुरु के बताए मार्ग पर स्वयं चलना पड़ता है। यशोदा मैया की कथा सुनी होगी। जब वे कन्हैया को ओखली में बाँधने के लिए रस्सी लेकर चलती हैं और जब-जब बाँधती है तो सदा दो अँगुल रस्सी छोटी पड़ जाती है। गुरुदेव कहते हैं ये एक अँगुल परिश्रम और दूसरा कृपा को इङ्गित करता है। जब मनुष्य स्वयं परिश्रम करता है तो गुरुकृपा स्वयं ही हो जाती है। इसलिए भगवान आगे चलकर कहते हैं कि इस मार्ग पर चलते हुए शान्ति की प्राप्ति की तो वह जीवन के सङ्घर्ष की स्थिति में यश-अपयश, मान-अपमान आदि आने पर वह डाँवाडोल नहीं होता और विचलित नहीं होता।

पिछले सत्र में हमने देखा भगवान सातवें श्लोक में कहते हैं-

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः |
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ||

कि जो प्रशान्त हो गया वह अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों में रहना सीख गया। जब मनोनुकूल परिस्थिति होती है तो मनुष्य सुख विभोर हो जाता है और प्रतिकूलता में अवसादग्रस्त हो जाता है। हे अर्जुन! यदि मनुष्य की शीत, उष्ण, दुःख, सुख, मान, अपमान आदि अवस्थाओं में अंतःकरण की वृत्तियाँ शान्त हैं तो उसके अन्दर परमात्म तत्त्व समाहित हो जाता है।

6.8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥8॥

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूट की तरह निर्विकार है, जितेन्द्रिय है (और) मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा स्वर्ण में समबुद्धि वाला है - ऐसा योगी युक्त (योगारूढ़) कहा जाता है।

विवेचन- भगवान उस योगी का अन्तरङ्ग हमारे सामने खोलकर रख देते हैं जिस योगी का चित्त निरन्तर शान्ति की अवस्था में है। ज्ञान यानि शब्द ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान अर्थात् सैद्धान्तिक ज्ञान से परिपूर्ण और विज्ञान अर्थात अनुभूति के स्तर पर प्राप्त होना है। उदाहरण के लिए जैसे रसगुल्ला सफेद है, रसभरा होता है, मीठा होता है, चाशनी में भिगोया होता है; ये सब बातें सैद्धान्तिक स्तर पर तो पढ़ लीं किन्तु जब उसको जिह्वा पर रखते हैं और उसका स्वाद चखते हैं तभी अनुभूति होती है। जो शास्त्र से सम्पन्न गुरु हैं, जो अनुभूति स्तर पर एक हैं, परमात्मा स्तर पर एक हैं, ऐसा ही कूटस्थ आत्मा है।

जैसे **स्वस्थ** कहते हैं जिसका तात्पर्य **स्व में स्थित रहना**। हम स्वस्थ नहीं बल्कि विषयस्थ रहते हैं, घटनाओं, प्रसङ्गों में स्थित रहते हैं। कूट अर्थात् पर्वत का शिखर। पर्वत के शिखर जहाँ न बरसात होती है न ही वायु की हलचल हो और इस प्रकार वहाँ पर विचलित करने वाली कोई घटना नहीं। अपने जीवन को जिसने दूर से, ऊपर से देखना प्रारम्भ कर दिया, जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली, उसे ही योगी कहते हैं। पहले ही अर्जुन को भ्रम है कि संन्यासी कौन है? श्लोकाङ्क एक में भगवान स्पष्ट कहते हैं कि हे अर्जुन! जिसने कर्म छोड़ दिया, ऐसा कोई व्यक्ति कार्यरत न रहने वाला, संन्यासी नहीं कहलाएगा। संन्यास अर्थात सम्यक्, अच्छी तरह से परख कर त्यागना, क्या त्यागना, क्या न त्यागना। यह बहिरङ्ग त्याग की अवस्था नहीं है यह अन्तरङ्ग त्याग की वृत्ति है। कर्म छोड़ना यह संन्यास नहीं है बल्कि अन्तरङ्ग के सारे विकारों से मुक्त होना ही संन्यास है।

जिसने मिट्टी, पत्थर, सुवर्ण को समझा है, इन सारी वस्तुओं के लिये जिसके मन की वृत्ति समान होती है, वही योगी कहा जाता है। वह जानता है मिट्टी की कीमत क्या है? सुवर्ण का मनुष्य ने ज्यादा मूल्यांकन कर दिया। सुवर्ण होना आवश्यक है किन्तु इससे पेट नहीं भरा जा सकता। सुवर्ण से, धन से अनाज खरीद सकते हैं पर अनाज मिट्टी में पैदा होता है।

इसी से जुड़ी एक कथा है कि एक राजा बहुत धनवान था। किसी के पास धन जितना आता है लोभ और बढ़ता जाता है और इस प्रकार अतृप्ति में दौड़ता रहता है। राजा ने भगवान से प्रार्थना करते हुए वरदान प्राप्त कर लिया कि वह जिस वस्तु को स्पर्श करेगा वह स्वर्ण बन जाएगी। अब जब उसने पेड़-पौधों को हाथ लगाया स्वर्ण हो गये, बिल्ली को स्पर्श किया वह भी स्वर्ण की हो गई, भूख लगी सेवकों ने अन्न और जल दिया जिसे स्पर्श करते ही वे भी स्वर्ण हो गए, राज कन्या को गोद में लिया वह भी स्वर्ण की हो गई। आशय ये है कि स्वर्ण इतना मूल्यवान नहीं है जिससे सबका और सब प्रकार से जीवन निर्वहन हो सके।

हे अर्जुन! ये जिसने समझ लिया वही मुक्त और योगी है। उसकी दृष्टि कैसी है, यह आगे के श्लोकों में भगवान बताते हैं।

6.9

सुहृन्मित्रार्युदासीन, मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु, समबुद्धिर्विशिष्यते॥9॥

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और सम्बन्धियों में तथा साधु आचरण करने वालों में (और) पाप आचरण करने वालों में भी समबुद्धि वाला मनुष्य श्रेष्ठ है।

विवेचन - हमारे जीवन में अनेक लोग आते हैं, उनका हमारे साथ सम्बन्ध भी अलग-अलग होता है। ये सभी हमारे लिए कितने मूल्यवान हैं, कितने महत्त्वपूर्ण हैं और जीवन में इनकी क्या भूमिका है? जिस प्रकार अग्नि हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण है किन्तु कितनी मात्रा में चाहिए?

उदाहरण के लिए- भोजन पकाने के लिए, शरीर में जठराग्नि के रूप में भोजन पचाने के लिए, कामाग्नि के रूप में कामनाओं की पूर्ति के लिए, ज्ञानग्नि के रूप में ज्ञान प्राप्ति के लिए चाहिए। यदि अग्नि यथेष्ठ मात्रा से बढ़ गया तो वह हमारा दहन भी कर सकता है। इसलिए भगवान यहाँ बहुत सारे सम्बन्धों का उल्लेख करते हैं जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धु, साधु और पापियों में समान भाव रखने वाला है वह अत्यन्त श्रेष्ठ है। इन सम्बन्धों की ओर समबुद्धि रखता है इसका अर्थ व्यवहार समान रखता है, ऐसा नहीं होता है। एक ही चेतना सबके अन्दर है ऐसा देखना समबुद्धि कहलाता है।

भगवान यहाँ पर कहते हैं कि सुहृद वह है जो हित करता है, हमारा हित चाहता है, जैसे माँ अपने बेटे की सुहृद होती है। यदि बेटे ने हित नहीं किया तो भी माँ सुहृद ही होती है। मैत्री में व्यवहार समान होता है, उसके साथ जिस प्रकार व्यवहार करेंगे वह भी उसी प्रकार का व्यवहार करेगा। मित्रता हमें प्रस्थापित करते रहना पड़ती है। उदासीन = उद+आसीन, उद माने ऊपर और आसीन मतलब स्थित। जो तटस्थ है जो बहुत निराश, उदास व्यक्ति नहीं है बल्कि जो दूर से देखकर तटस्थ रहता है जो कोई सङ्कट या समस्या आने पर मुझे कुछ सलाह देकर दूर ही अवस्थित रहता है। मध्यस्थ व्यक्ति हम से न प्रेम करते हैं न ही द्वेष करते हैं। कुछ द्वेष करने वाले होते हैं। बन्धुजन प्रेम करने वाले परिवारजन होते हैं। अरि जो शत्रुता निभाते हैं। साधु धर्मात्मा जन होते हैं और पापी पापाचार में लिप्त लोग होते हैं। इतने सारे लोग जो अपने जीवन में प्रतिदिन, प्रतिक्षण मिलते है; भगवान कहते हैं योगी उन सभी के लिए समान भाव रखते हैं, उनके व्यवहार से विचलित नहीं होते। मित्र को गले लगाओ, हमारा पड़ोसी देश है यदि वह बुरा व्यवहार करता है, हमारे सैनिकों को मारता है तो उसके लिए सर्जिकल स्ट्राइक आवश्यक हो जाता है।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं:

" Learn Gita in the light of Mahabharat "

महाभारत में भगवान ने एक-एक पापी को चुन चुनकर मारा है, छोड़ा नहीं अन्यथा वह आपको नहीं छोड़ेगा। पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मदगोरी को नौ बार हराया और प्रत्येक बार छोड़ दिया लेकिन दसवीं बार गोरी ने उन्हें बन्दी बनाकर आँखे तक निकलवा लीं। पापियों की पहचान अत्यन्त आवश्यक है, बुद्धि समान हो किन्तु व्यवहार समान नहीं हो। विभीषण ने रावण का अन्तिम संस्कार करने से मना कर दिया था किन्तु भगवान राम ने कहा कि राम का भाई समझ कर अन्तिम संस्कार करो।

यहाँ अब्राहम लिंकन का कथन पठनीय है:

" With Malice Towards None, With Love For All "

दुर्जनों से इस धरती को मुक्त कराने के लिए युद्ध तो होगें किन्तु युद्ध समाप्ति के बाद उसका देश, निज भावना अपने अन्दर नहीं रहनी चाहिए। जिस प्रकार एक माँ अपने सारे बच्चों से एक समान प्रेम करती है लेकिन समान वर्तन होता है क्या? एक दूध पीता बच्चा, व्यायाम करने वाला, स्कूल में पढ़ने वाला, एक टायफाइड से पीड़ित बच्चा; सबके लिए अलग-अलग उपयुक्त रसोई बनाएगी। इसलिए जीवन में आ रहा बैरी भी कुछ सीख देने के लिए आ रहा है। जीवन जीने वाले की दृष्टि किस प्रकार की होती है वही महत्त्वपूर्ण है।

सन्त ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं:

"विश्व में सब अलङ्कार हैं, अलग-अलग नाम, रूप और काम हैं"। जिस प्रकार एक सुवर्ण को बदलकर अनेक प्रकार के आभूषण निर्मित होते हैं किन्तु पैर का आभूषण गले में नही धारण किया जा सकता और गले का हार हाथ में नहीं धारण कर सकते जबकि सभी एक ही सुवर्ण से बने हैं। जिस प्रकार सुवर्ण से बनाए सारे गहने उनका जहाँ स्थान हैं वहीं पर रहते हैं उसी प्रकार परब्रह्म से निर्मित ये सारे जो नाम, रूप सृष्टि में दिखने वाले सभी परब्रह्म से बन्धे हैं, तो उसी प्रकार सभी के प्रति सम बुद्धि होनी चाहिए। गीता हमें समत्व की ओर ले जाती है। अन्तरङ्ग में समभाव हो तथा धारणा, ध्यान,समाधि का अभ्यास करना चाहिए। हमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार का पालन करना चाहिए जिनका बहिरङ्ग स्वभाव है और धारणा, ध्यान व समाधि का अन्तरङ्ग स्वभाव है। अन्तर्यात्रा से शान्ति मिलती है और तीर्थ यात्रा से पुण्य लाभ मिलता है।

6.10

योगी युञ्जीत सततम्, आत्मानं(म्) रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा, निराशीरपरिग्रहः॥10॥

भोग बुद्धि से संग्रह न करने वाला, इच्छा रहित (और) अन्तःकरण तथा शरीर को वश में रखने वाला योगी अकेला एकान्त में स्थित होकर मन को निरन्तर (परमात्मा में) लगाये।

विवेचन: सृष्टि के साथ सम्बन्ध विच्छेद करते हुए अन्तरङ्ग यात्रा करनी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता संघर्षपूर्ण परिस्थिति में भगवान कृष्ण द्वारा गाया हुआ गीत है। कुरुक्षेत्र में सूर्यास्त के बाद युद्ध नहीं होता था, युद्ध विराम रहता था। तब सभी रथी, महारथी आदि स्नान संध्या करते थे, एकाग्रता के लिए, शान्ति के लिए। इसके लिए समय भी महत्त्वपूर्ण है। जब सृष्टि में अन्य कार्य प्रारम्भ नहीं होते तभी अष्टाङ्ग योग का अभ्यास करना चाहिए। जिसने अपने मन, इन्द्रियों और बुद्धि पर नियन्त्रण कर लिया, ऐसा योगी निराशी है इसका अर्थ आशा रहित और दूसरों से अपेक्षा न करना। कभी-कभी दूसरों से अपेक्षा के भङ्ग से दुःख पहुँचता है।

एक माँ अपने बेटे के लिए कष्ट उठाती है और यदि उसके मन में अपेक्षा का भाव बैठ गया किन्तु पुत्र के बड़ा होने पर वह पूछता तक नहीं तो माँ निराश होगी और अपेक्षा भङ्ग का दुःख पाती है। दूसरे के व्यवहार से अपेक्षा की गीता में मनाही है। इसलिए भगवान कहते हैं कि अपना उद्धार स्वयं ही करना है। ईश्वर अनुपमेय बात बताते हैं, अपरिग्रह का क्या तात्पर्य है समझाने का प्रयास करते हैं।

पहले अध्ययन कक्ष बहुत छोटा होता था। वहाँ पर बहुत सारी वस्तुओं का सङ्ग्रह हो तो मन विचलित हो जाता है, अतः सङ्ग्रह की कमी आवश्यक है। एकान्त स्थान सेवी होना चाहिए। ऐसे योगी ने परमात्मा में अपना मन एकाकार कर लिया है। ऐसी जगह पर जाकर अपने मन को नियन्त्रित करते हुए अपनी अन्तरयात्रा का प्रारम्भ कर दिया है। स्थान कैसा हो इस पर भी विचार करना चाहिए। पाँच हजार वर्ष पहले भगवान ने गीता कही जो हमारे लिए पाथेय बनकर आई। देखना चाहिए जहाँ किसी ने पहले ध्यान लगाया हो, वहाँ उसकी तरङ्गें हैं, वहाँ ध्यान जल्दी लगता है। अगर सामूहिक रूप से ध्यान करते हो, तो ध्यान जल्दी लगता है। अकेले मन इधर-उधर भागता है। ध्यान कहाँ करना है अगले श्लोक में भगवान बताते हैं -

6.11

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य, स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं(न्) नातिनीचं(ञ्), चैलाजिनकुशोत्तरम्॥11॥

शुद्ध भूमि पर, (जिस पर क्रमशः) कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, (जो) न अत्यन्त ऊँचा है (और) न अत्यन्त नीचा, (ऐसे) अपने आसन को स्थिर स्थापन करके।

विवेचन: ध्यान के लिए कैसा काल होना चाहिए। प्रातः काल का समय होना चाहिए। सारी सृष्टि सोई हुई है, आहट भी कम है, इसलिए ऐसा समय और पवित्र स्थान चुनना चाहिए। क्लब में नाच-गाना, शराब का सेवन आदि होता है और वहाँ उसी प्रकार की तरङ्गें भी होंगी।

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि जैसी हम तरङ्गें चाहते हैं वैसे ही स्थान पर रहना चाहिए। भगवान कहते हैं ऐसी जगह स्थित हो जाओ। आसन भी स्थिर होना चाहिए। उस समय ध्यान, धारणा करने के लिए कपास का वस्त्र, मृग चर्म जो स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त मृग से प्राप्त हो, कुश आदि का आसन बिछाना चाहिए जो न ज्यादा ऊँचा हो और न ही ज्यादा नीचा हो। इस प्रकार स्वयं का आसन स्वयं ही स्थापन करना चाहिए।

वहाँ पर जाकर क्या-क्या करना है, भगवान आगे के श्लोक में बताते हैं-

6.12

तत्रैकाग्रं(म्) मनः(ख्) कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्, योगमात्मविशुद्धये॥12॥

उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग का अभ्यास करे।

विवेचन: उपर्युक्त प्रकार का आसन चयन करना चाहिए। हम मन्दिर क्यों जाते हैं? क्योंकि वहाँ अच्छी तरङ्गें उपस्थित रहती हैं। जिस प्रकार हवा सब जगह रहते हुए भी हम पँखा चलाते हैं जिससे हवा एकाग्र हो सके। इसी प्रकार परमात्मा की आरती करते हैं, आराधना करते हैं जिससे तरङ्गें एकाग्र होती हैं। इसीलिए भगवान कहते हैं कि वहाँ पर रहकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को नियन्त्रित करते हुए अंतःकरण की पवित्रता के लिए इस योग का अभ्यास करना चाहिए। यह अन्तर यात्रा का प्रारम्भ होता है।

अध्याय पाँच के श्लोकाङ्क सत्ताइस में श्रीभगवान कहते हैं कि-

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ

भगवान कहते है, दोनों भौहों के बीच में दृष्टि को स्थिर कर मन और बुद्धि को नियन्त्रित कर नासिका में विचरण करने वाले प्राण और अपान वायु को सम कर अन्तर यात्रा करनी चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि परमात्मा के साथ एकाकार होने से आत्मशुद्धि होती है क्योंकि परमात्मा अविकारी है। विकार क्यों आते है? क्योंकि ये सृष्टि विकारी है और इसके सम्पर्क में आने पर पाँचों इन्द्रियाँ सम्पर्क में आती हैं और विकारों से पोषित होती हैं। मेरे मन को विकारों से मुक्त करिए थोड़ी देर के लिए। इस सृष्टि से मुख मोड़कर परमात्मा से एकाकार होने के लिए यत्न करना चाहिए।

मन इधर-उधर जाता है तो कबीर दास जी कहते हैं:

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो चहुँदिसि फिरै, यह ते सुमिरन नाहिं।।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं, कुण्डलिनी जागरण के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो साधकों ने पवित्र किया हो, जहाँ बहुत ज्यादा लोग आते-जाते न हों। ऐसी जगह और छोटी जगह पर आत्मशुद्धि के लिए ध्यान, धारणा का अभ्यास करना चाहिए।

6.13

समं(ङ्) कायशिरोग्रीवं(न्), धारयन्नचलं(म्) स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं(म्) स्वं(न्), दिशश्चानवलोकयन्॥13॥

काया, शिर और ग्रीवा को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देखकर (केवल) अपनी नासिका के अग्रभाग को देखते हुए स्थिर होकर (बैठे)।

विवेचन: परमात्मा से मिलना है, एकाग्र होना है और ये सब बातें लौकिकता के लिए भी उपयोगी होंगी। नर्तकी के लिए, संगीतज्ञ के लिए, वैज्ञानिक, शोधकर्ता, विद्यार्थी आदि, सबको एकाग्र होना पड़ेगा। अपने ध्येय वस्तु के लिए एकाग्र होना चाहिए। ये ध्येय वस्तु लौकिक हो या परलौकिक सभी में उपयोगी है। सभी के लिए एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए।

शरीर, सिर, गले को एक सीधी रेखा में रखना, अचलता से रखते हुए हलचल न करते हुए नासिका के अग्र भाग पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित करना और अन्य दिशाओं से दृष्टि को मोड़ लेना अर्थात् उनकी ओर दृष्टि न करना।

गुरुदेव कहते हैं- दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित करने का मतलब दोनों भृकुटियों के मध्य भी होता है। अगर बहुत सारी बातें करनी हैं तो बात कर लो फिर ध्यान करो जिससे ध्यान भटके नहीं।

भगवान महावीर खड़े-खड़े भी ध्यानवस्था में रहते थे। नेपोलियन बोनापार्ट बहुत वीर, पराक्रमी सेनापति थे और जब युद्ध विराम होता था तो वे गणित की पहेलियाँ हल करते थे और उस क्षण युद्ध की बात मन से निकाल देते थे। कहा जाता है:

Work while you work, play while you play,
That is the way to be happy and gay .

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी समाधि के बारे में बताते हुए कहते हैं कि आने वाले(भविष्य) से सम्बन्ध विच्छेद और भूतकाल से भी सम्बन्ध विच्छेद कर वर्तमान काल में रहना ही समाधि है किन्तु हम इसके विपरीत भूत और भविष्य में ही उलझे रहते हैं।

6.14

प्रशान्तात्मा विगतभी:(र्), ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः(स्) संयम्य मच्चित्तो, युक्त आसीत मत्परः॥14॥

जिसका अन्तःकरण शान्त है, जो भयरहित है और जो ब्रह्मचारिव्रत में स्थित है, (ऐसा) सावधान ध्यान-योगी मन का संयम करके मेरे में चित्त लगाता हुआ मेरे परायण होकर बैठे।

विवेचन - योग शब्द का अर्थ जुड़ना, एकाग्रता है किन्तु यह लौकिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। अलौकिकता के लिए परमात्मा को प्राप्त करना है तो एकाग्रता कैसी होनी चाहिए? उदाहरण के लिए यदि राष्ट्रपति को मिलने जाना है तो किस प्रकार के नियम होते है, आँखें कहाँ रखना, गर्दन कहाँ रखना ये सब बताई जाती हैं, किन्तु यहाँ तो परमात्मा से मिलने की बात हो रही है तो कुछ तो नियमों की बात होनी चाहिए न।

भगवान यहाँ पर इनके बारे में कहते हैं-

ब्रह्मचारी शब्द का अर्थ सामान्य रूप से जिसका विवाह न हुआ हो, से लिया जाता है किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए, अपने स्वयं के स्वरूप को जानने के लिए जो आचरण करता है, जिसने ब्रह्मचारी का व्रत लिया है, जिसने अपने जीवन को उसी मार्ग पर लगाया और अपना गन्तव्य भलीभाँति समझ लिया है। ऐसा जो व्यक्ति है जो भय से रहित है, अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों में शान्त, मन को संयमित कर परमात्मा में लगाते हुए और परमात्मा को जीवन में सर्वोपरि मानते हुए स्थित हो।

भगवान मेरे जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं तो चित्त इधर-उधर जायेगा ही नहीं। इसके लिए दो शर्तों का पालन करना है। चित्त परमात्मा में लगाते हुए केन्द्र में भगवान को मानना। घर में प्रदक्षिणा स्वयं की करते हैं, आत्मा यहाँ शरीर स्थित केन्द्र में है और मन्दिर में भी भगवान केन्द्र में हैं। इस जीवन के केन्द्र को पहचानना है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि संसार में हम इतने उलझे रहते हैं, कि ईश्वर ही नियामक हैं यह भूल जाते हैं। जैसे किसी बगिया में बहुत सारे सुन्दर फल, फूल आदि लगे होते हैं और उसी में मन उलझ जाता है इसका नियन्ता कौन है, इसकी रचना किसने की, ये विचार आते ही नहीं है। ठीक इसी प्रकार हमारा इस संसार रूपी बगिया के सौन्दर्य और दृश्यों में मन अटका रहता है, इसके सृष्टिकर्ता और नियामक को हम भूल जाते हैं। इस प्रकार जब मन में इस संसार के सृष्टा के प्रति उत्सुकता जागेगी तो वह केन्द्र में होगा।

एक और उदाहरण से इसे समझते हैं। एक गर्भवती माँ केवल गर्भ के लिए भोजन करती है, दवा लेती है तो भी अपने गर्भ की रक्षा के लिए और जब वह बालक गर्भ से बाहर आता है तो बहुत आनन्दित होती है और उससे एकाकार रहती है। ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य परमात्मा को केन्द्र में रखता है तो उसे असीम आनन्द मिलता है।

6.15

युञ्जन्नेवं(म्) सदात्मानं(म्), योगी नियतमानसः।
शान्तिं(न्) निर्वाणपरमां(म्), मत्संस्थामधिगच्छति॥15॥

वश में किये हुए मन वाला योगी मन को इस तरह से सदा (परमात्मा में) लगाता हुआ मुझमें सम्यक् स्थिति वाली (जो) निर्वाण परमा शान्ति है, (उसको) प्राप्त हो जाता है।

विवेचन - जिसने अपने मन को वश में कर लिया और निर्णय कर लिया कि ईश्वर के साथ एकाकार होना है। इस प्रकार उस परमात्मा में मन को लगाते हुए जो शान्ति, परमानन्द, अखण्ड ज्ञान मिलता है, जिससे वह परम शान्ति प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन! उसे फिर कोई प्रसङ्ग विचलित नहीं कर सकता।

6.16

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन॥16॥

हे अर्जुन ! (यह) योग न तो अधिक खाने वाले का और न बिलकुल न खाने वाले का तथा न अधिक सोने वाले का और न (बिलकुल) न सोने वाले का ही सिद्ध होता है।

विवेचन: किस प्रकार से सन्तुलन होना चाहिए इसके लिए दो श्लोक कहे गए हैं। बहुत ज्यादा अन्न सेवन करने वाला- इसका ये अर्थ नहीं कि मुख से अन्न लेने वाला ही अन्न है। हम आँखों से दृश्य का आहार, नासिका से गन्ध, त्वचा से स्पर्श, जिह्वा से रस का आहार, कर्ण से शब्द का आहार लेते रहते हैं। बहुत ज्यादा आहार सेवन करने वाला या बहुत उपवास करने वाला अथवा बिल्कुल न खाने वाला, क्योंकि शरीर को चलाने के लिए कुछ आहार लेना ही चाहिए नहीं तो मन एकाग्र कैसे होगा?

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि युक्ति से काम लेना चाहिए। इन्द्रियाँ बहुत बेचैन हो रही हैं तो उनको आहार दे देना। आईपीएल चल रहा है तो बच्चों को थोड़ा देखने देना जिससे पढ़ते समय उनका मन एकाग्र हो सके और फिर कहना चाहिये अब नहीं मिलेगा।

जो बहुत ज्यादा निद्रा लेने वाला है, स्वप्नों में रहने वाला और जो बिल्कुल भी नींद न लेने वाला हो, ऐसे लोगों को योग सिद्ध नहीं होता।

वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन की उक्ति है कि:

"Life is like a driving Bicycle"

जैसे साइकिल चलाने में सन्तुलन की आवश्यकता है ठीक वैसे ही जीवन में भी सन्तुलन की आवश्यकता है।

6.17

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥17॥

दुःखों का नाश करने वाला योग (तो) यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का (तथा) यथायोग्य सोने और जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

विवेचन - जीवन को आनन्द के मार्ग पर चलाने वाले के लिए योग आवश्यक है। यह यथायोग्य आहार विहार करनेवाला अर्थात् नपा-तुला सन्तुलित जीवन जिसे हर एक व्यक्ति के लिए स्वयं को चुनना है। कर्म में भी यथायोग्य व्यवहार करने वाला, ठीक से यथायोग्य निद्रा लेनेवाला और जगने वाले का ही योग सिद्ध होता है।

जैसे एक सङ्गीतज्ञ तार को खींच कर यन्त्र से सङ्गीत की मधुर ध्वनि निस्सरित करता है। ज्यादा तार खींचता है तो सङ्गीत नहीं निकलेगा और ढीला है तो भी सङ्गीत नहीं निकलेगा। इसी तरह अपने जीवन के तार उतने ही खींचे जाने चाहिए जिससे जीवन रूपी सङ्गीत मधुर हो जाए। हमारे आयुर्वेद के आहार शास्त्र में भी कहा गया है कि भूख से आधा ही भोजन करना चाहिए, एक चौथाई भाग पानी और एक चौथाई रिक्त रहना चाहिए।

6.18

यदा विनियतं(ञ्) चित्तम्, आत्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः(स्) सर्वकामेभ्यो, युक्त इत्युच्यते तदा॥18॥

वश में किया हुआ चित्त जिस काल में अपने स्वरूप में ही स्थित हो जाता है (और) (स्वयं) सम्पूर्ण पदार्थों से निःस्पृह (हो जाता है), उस काल में (वह) योगी है - ऐसा कहा जाता है।

विवेचन: गुरुदेव कहते हैं कि एक घण्टे के ध्यान के लिए चौबीस घण्टों का अनुशासन चाहिए तभी ध्यान में सफलता मिलती है। जिसने चित्त को नियन्त्रित करते हुए, अपनी आत्मा में लगाते हुए अपने सम्पूर्ण भोगों की इच्छा को किनारे कर दिया है। हे अर्जुन! ऐसे व्यक्ति को ही योगयुक्त कहा जाता है।

6.19

यथा दीपो निवातस्थो, नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य, युञ्जतो योगमात्मनः॥19॥

जैसे स्पन्दन रहित वायु के स्थान में स्थित दीपक की लौ चेष्टा रहित हो जाती है, योग का अभ्यास करते हुए वश में किए हुए चित्त वाले योगी के चित्त की वैसी ही उपमा कही गयी है।

विवेचन - वायुरहित स्थान पर जिस प्रकार दीपक की लौ निष्कम्प रहती है, विचलित नहीं होती, वही उपमा उस योगी के चित्त को दी जाती है जो इस प्रकार जीवन जीते हुए परमात्मा के साथ एकाकार होकर, परमात्मा में लगाते हुए जीवन जीता है। जैसे स्फटिक में रखा हुआ दीपक निष्कम्प जलता है।

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ आज के सत्र का समापन हुआ। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर सत्र हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्न कर्ता -: अशोक भैया

प्रश्न- अखण्ड सुख क्या है?

उत्तर: परमात्मा में परम शान्ति की अनुभूति। जैसे सागर में लहरें है, सृष्टि विकारों से बनी हुई है, विचलित करने वाली है किन्तु परमात्मा शान्त अविकारी है। जिसने अपने मन को शान्त कर लिया वह परम शान्ति को प्राप्त होता है।

प्रश्न कर्ता -: आकांक्षा दीदी

प्रश्न - श्रीमद्भगवद्गीता सञ्जय ने सुनी, हनुमानजी ने सुनी किन्तु लिखा किसने**?**

उत्तर: महर्षि वेदव्यास ने महाभारत को भीष्म पर्व में सम्पादित किया जो पैंतालीस मिनट का भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद था जिसे गणेश जी ने लेखनीबद्ध किया। **भगवान आदि शङ्कराचार्य** ने वहाँ से निकाल कर दिया।

प्रश्न कर्ता -: शिवम भैया

प्रश्न - श्लोक संख्या दस और ग्यारह में एकाग्रता के बारे में बताया गया है। हमें भगवान पर एकाग्र करना है या अपने कर्म पर भी एकाग्र करना है?

उत्तर: हम लोग कर्म करते हुए एकाग्र करते हैं। जैसे रसोई में एकाग्रता नहीं है तो रसोई बिगड़ सकती है। इस प्रकार कर्म में योग होना चाहिए जैसे नर्तकी, संगीतज्ञ आदि करते हैं। किन्तु यदि मन परमात्मा में लगा दिया तो यही कर्म योग हो जाता है।

समापन प्रार्थना के साथ आज का सत्र सम्पन्न हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||